बच्चों से बातचीत

❑ हेतु भारद्वाज

कक्षा में शिक्षण के दौरान पाठ्य-विषयों पर शिक्षक की बच्चों से चर्चा तो स्कूलों की सामान्य प्रक्रिया है । लेकिन यह चर्चा शायद ही कभी एक खास दायरे से बाहर जा पाती है। स्कूल में पाठ्येत्तर गतिविधियों के दौरान होने वाले शिक्षक-छात्र संवाद की भी एक अघोषित आचार-संहिता है । गंभीर चिन्तन-मनन के अनेक क्षेत्रों पर बच्चों का विमर्श निषिद्ध है । इस निषेध के आधार पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए यह पुस्तक दर्शन के क्षेत्र में बच्चों से खुले संवाद की वकालत करती है ।

अंग्रेजी के रोमेन्टिक कवि वर्ड्सवर्थ ने अपनी 'रेनबो' शीर्षक कविता में कहा था - 'चाइल्ड इज द फादर ऑफ मैन ।' यह उक्ति अपने व्यापक अर्थ गाम्भीर्य के कारण चिन्तक समाज में चर्चा का विषय रही है। कवि का आशय कितना ही गूढ़ रहा हो, इस पंक्ति की व्याख्याएं कितनी ही दार्शनिक रही हों किन्तु मोटे रूप में यह पंक्ति मानव सभ्यता के विकास में बालक के बचपन के महत्व की ओर संकेत अवश्य करती है । बच्चों के बारे में हमारी सामान्य और वयस्क धारणा यह होती है कि वे कुछ बातों के बारे में नहीं जानते या नहीं जान सकते । कुछ तथ्य उनकी समझ में आ ही नहीं सकते। सामान्यत: बच्चों के करणीय-अकरणीय के मानदण्ड हमारे पास पहले से तय होते हैं । हम बच्चों को यह कहकर कि 'तुम इसे नहीं समझ सकते' अनेक गंभीर संवादों से दूर रखते हैं । जबकि बच्चों के मन में उन संवादों में भागीदारी करने की तीव्र जिज्ञासा होती है। हम यही तो चाहते हैं कि बच्चे केवल अच्छी बाते हीं सीखें, इसलिए विधि-निषेध के बने बनाये खांचे उनके लिए हमारे पास तैयार रहते हैं ।

'बच्चों से बातचीत' पुस्तक अमरीकी शिक्षाशास्त्री गैरेथ बी. मैथ्यूज की पुस्तक 'डायलाग विद चिल्ड्रन' का हिन्दी अनुवाद (अनुवादक सरला मोहनलाल) है । बच्चों की शिक्षा और खासतौर से उनके चिन्तन स्तर तथा उनकी चिन्तन-क्षमता के विषय में मैथ्यूज ने काफी अनुसंधान किया है । बच्चों की चिंतन क्षमता के बारे में आम शिक्षकों तथा अभिभावकों में मूलबद्ध अनेक मान्यताओं को उन्होंने चुनौती दी है ।

यह पुस्तक विकास मनोविज्ञान की सीमाओं को उजागर कर बच्चों के चिंतन की नयी संभावनाएं बताती है । विकास मनोविज्ञान की आलोचना करते हुए गैरेथ मैथ्यूज कहते हैं कि विकास मनोवैज्ञानिक मुख्यत: उन योग्यताओं के विकास पर अधिक ध्यान देते हैं जिनको हमारे समाज में अधिक महत्व दिया जाता है । हमारा समाज बच्चों में दार्शनिक समस्याओं पर सोचने और मूलभूत प्रश्नों पर चर्चा करने की क्षमता की व्यापक रूप से उपेक्षा करता है । दूसरी बात, यह स्वाभाविक है कि हम विकास मनोविज्ञान की परिकल्पना को शारीरिक विकास से जोड़ते हैं । तीसरी बात, सब ही जानते हैं कि ज्ञानात्मक विकास के मनोविज्ञान में ज्याँ पियाज़े का नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । छोटे बच्चों के दर्शन समझने की क्षमता के प्रति पियाज़े को संदेह था ।

मैथूज के अनुसार पियाज़े पर स्विस और फ्रेंच संस्कृति का प्रभाव अधिक है क्योंकि वह उन्हीं के परिवेश में बड़ा और परिपक्व हुआ था । उस पर अंग्रेजी भाषी देशों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है । योरप में दर्शनशास्त्र अधिक आडम्बर पूर्ण और अधिक सुव्यवस्थित है। हम देखते हैं कि अंग्रेजी भाषी देशों में विश्लेषणात्मक दर्शनशास्त्र की जिन शैलियों का प्रभाव रहा है, उनमें ऐसा आडम्बर नहीं है । वे अक्सर चुलबुले ढंग से अपनी बात कह देते हैं । (लुई केरोल भी एक मंजा हुआ दर्शनशास्त्री था) यह शैली, बच्चों के विचार करने के ढ़ंग के अधिक निकट है, परन्तु पियाज़े की आडम्बर पूर्ण शैली में यह बात नहीं है ।

पुस्तक की भूमिका में मैथ्यूज कहते हैं, 'मेरा पहला उद्देश्य यह है कि मैं वयस्कों की ऐसे सम्मोहक प्रश्नों के प्रति रुचि जागृत करूं जिन पर बच्चों के साथ मिलकर विचार करना उनके और बच्चों के लिए लाभदायक होगा । यह नहीं समझना चाहिए कि इन प्रश्नों पर केवल विशेषज्ञ दार्शनिकों का एकाधिकार है । मेरा दूसरा उद्देश्य यह है कि मैं आकर्षक ढंग से बच्चों के साथ ऐसे संबंधों की संभावना को पाठकों के सामने चित्रित करूं जिनकी वे साधारणत: कल्पना नहीं करते ।'

गैरेथ बी मैथ्यूज की यह कृति विकास मनोविज्ञान की उक्त अवधारणाओं से न केवल टकराती है, प्रत्युत बच्चे के संदर्भ में इन मान्यताओं को खेदजनक करार देते हुए निरस्त करती है । यह कृति वयस्कों को ऐसे सम्मोहक प्रश्नों की ओर आकृष्ट करती है जिन पर वे बच्चों के साथ मिलकर विचार कर सकते हैं । यह विचार प्रक्रिया न केवल बच्चों के लिए लाभप्रद रहेगी बल्कि वयस्कों के ज्ञान को भी समृद्ध करेगी । मैथ्यूज की यह कृति बच्चों की मानसिक क्षमताओं के विषय में चिन्तन के नये आयाम खोलती है इसलिए बच्चे के विकास को समझने के प्रत्यय को नयी दिशा देती है । मैथ्यूज की मान्यता है कि बच्चे में नये ज्ञान के प्रति असीम जिज्ञासा होती है इसलिए वे प्राय: बड़े रोचक, तर्कसंगत और प्रेरक प्रश्न करते हैं। बच्चे नैसर्गिक रूप से कल्पनाशील, स्वप्नदर्शी और जिज्ञासु होते हैं। स्वाभाविक रूप से ही वह वयस्कों के साथ संवाद करने तथा वयस्कों के संवाद में भागीदारी करने को आकुल रहते हैं । वे हर समस्या व हर विषय पर वयस्कों से बात करना चाहते हैं। जिन विषयों को हम अमूर्त तथा दार्शनिक मानकर बच्चे के लिए अग्राह्य मानते हैं उन पर बच्चे अपनी राय मौलिक ढंग से प्रस्तुत करने को तत्पर रहते हैं । उनकी कल्पना शक्ति सतत सक्रिय रहती है इसलिए उसकी परिधि से विश्व का कोई प्रत्यय बाहर नहीं है । बच्चे की मानसिक क्षमताओं का तभी पता चल सकता है जब वयस्क अपने पूर्वाग्रहों को छोड़कर अपनी बातचीत में बच्चे को भी शामिल करें। केवल शामिल ही नहीं, बच्चे को बातचीत में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए । स्वभावत: बच्चा जिज्ञासाओं से लबालब रहता है तथा अपने अनुभवों को वह वयस्कों के साथ बांटना चाहता है । मैथ्यूज अपनी इस कृति में यही स्थापित करते हैं कि बच्चे के साथ निरंतर संवाद रख बच्चे की अवधारणाओं को समझना मां-बाप, शिक्षक का धर्म है । बच्चे के बारे में विकास मनोविज्ञान की मान्यताओं से जो हानि होती है उसकी रक्षा में यह कृति वयस्कों को नयी दृष्टि प्रदान करती है ।

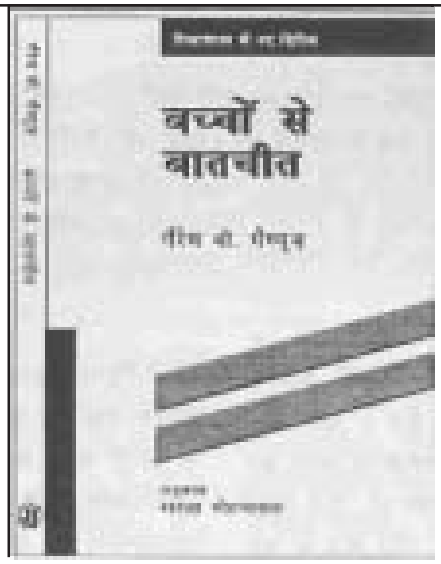

बच्चों से बातचीत - गैरेथ बी. मैथ्यूज,
अनुवादक - सरला मोहन लाल
प्रकाशक - ग्रंथ शिल्पी, दरियागंज, नयी दिल्ली
मूल्य - 125/- रुपये ।

'बच्चों से बातचीत' की प्रस्तावना में प्रोफेसर कृष्णकुमार लिखते हैं : 'इस पुस्तक में बच्चों के साथ कुछ ऐसे संवाद संग्रहीत हैं जिन्हें सहज ही दार्शनिक कहा जा सकता है । इन संवादों की वैचारिक गहराई हमें इसीलिए चौंकाती है कि संवादों की शैली एकदम सहज और स्वाभाविक है और इस कारण हम यह बात भूल-ही जाते हैं कि ये संवाद बच्चों से किए गए हैं । मनुष्य होने के नाते स्वतंत्र होकर सोचने और अपनी बात को गंभीरता से रखने और उतनी ही गंभीरता से बात के सुने जाने का अधिकार बच्चे को देना कितना जरूरी है, यह सत्य इस पुस्तक को पढ़कर हमारी पकड़ में सरलता से आ जाता है।'

गैरेथ बी. मैथ्यूज ने अपने अनुभव और अनुसंधान द्वारा स्थापित किया है कि गंभीर, गूढ़, अमूर्त तथा दार्शनिक माने जाने वाले विषयों पर विचार करने की क्षमता बच्चों में वयस्कों जैसी ही होती है । आवश्यकता इस बात की है कि वयस्क धैयपूर्वक बच्चे की इस क्षमता को प्रकट होने का अवसर दें। मैथ्यूज अपनी धारणाओं को छोटी-छोटी कहानियों में तार्किक ढंग से प्रस्तुत करते हैं तथा उदाहरण देकर सिद्ध करते हैं कि बच्चों में सोचने की क्षमता अपार होती है । वयस्क तो बच्चे से ही बहुत कुछ सीख सकते हैं । मैथ्यूज कहते हैं 'हम बच्चों को समझाते हैं कि उन्हें बहादुर बनना चाहिए लेकिन बहादुरी की अवधारणा को अच्छी तरह समझना कठिन है। मैं यह कह सकता हूं कि बहादुरी के बारे में सोचने में हमें बच्चों की सहायता करनी चाहिए । परन्तु मुझे यही आशंका है कि यदि बड़े लोग भी बच्चों के साथ बहादुरी के बारे में नये सिरे से सोचने को तैयार हो जाएं तो वे इस चर्चा से बच्चों के बराबर ही सीखेंगे । इसलिए मैं यही कहूंगा कि बच्चों के साथ मिलकर, हम बहादुरी की अवधारणा के बारे में सोचें और इसे समझने में एक दूसरे की सहायता करें ।'

इस कृति में लेखक ने छोटे-छोटे संवादों में बच्चों को शामिल किया है तथा 'सुख', 'इच्छा' जैसे अमूर्त विषयों पर बच्चों की रायों को प्रस्तुत किया है । जैसे 'सुख' पर बातचीत कर वे पाते हैं कि बच्चे स्वत: ही बता देते हैं कि जो काम करने से उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता है वही उनके लिए सुख है। 'इच्छा' पर बात करते समय पाया गया कि 'वयस्कों की कल्पना इतनी स्वतंत्र नहीं थी और उन्होंने, यथार्थ और कल्पना में भेद बनाए रखना जरूरी समझा।' जबकि बच्चों की कल्पना में स्वतंत्रता का अधिक उपयोग किया

गया था, इसलिए उनके निष्कर्ष भी कल्पनाओं से भरे थे । बच्चे अपनी कल्पना के आधार पर तर्क करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं और अपनी मान्यताएं प्रस्तुत करते जाते हैं । यह अभिभावक, शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बच्चे के साथ इस तर्क शृंखला को नये-नये प्रश्नों से गति प्रदान करे और बच्चे की समझ को विकसित होने देने में मदद करे ।

बच्चे जो कुछ देखते-सुनते और पढ़ते-समझते हैं उन्हीं के आधार पर अपने अनुभव संसार को विस्तार देते हैं और नयी-नयी मान्यताओं को विकसित करते हैं । एक बच्चे ने औपचारिक रूप से पढ़ा - क बराबर ख और ख बराबर ग तो क ग के बराबर भी हुआ । ज्यामिति की यह तर्कणा बच्चे के मानस में बहुआयामी विस्तार पा सकती है - जैसे एक बच्चे ने कह दिया कि पनीर घास से बनता है । यह चौंकाने वाला कथन था, लेकिन अध्यापक ने इस कथन को बच्चों के साथ बातचीत में एक तर्क शृंखला से जोड़ दिया ।

गाय दूध देती है ।

गाय घास खाती है ।

पनीर दूध से बनता है ।

पनीर घास से बनता है ।

अध्यापक जब इस संवाद को आगे बढ़ाने में बच्चों की मदद करता है तो उनकी समझ में यह भेद भी आ जाता है कि कागज लकड़ी से बनता है पर लकड़ी का नहीं बनता । यदि कागज लकड़ी का बनता तो लकड़ी जैसा ही होता । इसी तरह पनीर दूध से बनता है मगर दूध का नहीं बनता। 'से' और 'का' का यह भेद बच्चों की समझ में इस बातचीत से ही आया । तात्विक दृष्टि से देखें तो 'से' और 'का' का यह भेद अत्यंत सूक्ष्म है। सुख और इच्छा पर बात करना भी सूक्ष्म और अमूर्त है पर उपयुक्त बातचीत से वे उत्साहपूर्वक अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए अपने निष्कर्ष देते हैं और अमूर्त विषयों को भी चर्चा के दायरे में ले आते हैं। मैथ्यूज इन रोचक उदाहरणों से यह प्रमाणित करते हैं कि बच्चों की समझ गूढ़ तथा अमूर्त विषयों को ग्रहण कर सकती है ।

पुस्तक में 'सुख', 'इच्छा', 'ज्ञान', 'शब्द', 'भविष्य' जैसी अवधारणाओं पर तो बच्चों का चिन्तन-मनन है ही, साथ ही 'समय यात्रा', 'आचारशास्त्र', 'पनीर', 'जहाज' और कहानियों पर विश्लेषणात्मक संवाद हैं । बच्चों की बातचीत में किस तरह सकारात्मक हस्तक्षेप किया जाये और उसे दिशा दी जाये, ये बात इन अध्यायों से समझी जा सकती है । लेखक ने संवादों की तर्कसंगति और निष्पत्ति का विवेचन किया है । इस विवेचन के दौरान उन्होंने अपने विचार और मान्यताओं को भी प्रस्तुत किया है।

बच्चों की प्रश्नाकुलता कई बार अभिभावक/शिक्षक के समक्ष चुनौती बन जाती है । यदि अभिभावक तथा शिक्षक बच्चों के प्रश्नों को आत्मीयता और ध्यान से सुनें और उनके साथ सार्थक संवाद स्थापित करें तो बच्चे नयी-नयी उद्भावनाओं को प्रस्तुत करेंगे । इस बातचीत से अभिभावक तथा शिक्षक स्वयं अनुभव करेंगे कि बच्चे में गूढ़, अमूर्त तथा दार्शनिक विषयों पर बात करने की क्षमता है । उसकी इस क्षमता का प्रयोग उनके ही नहीं, वयस्कों के भी और प्रकारान्तर से सामूहिक समझ के विकास में उपयोगी होगा ।

मैथ्यूज के इस काम के बारे में राबर्ट कोल्स ने ठीक ही कहा है, 'उन्होंने हमारा ध्यान इस ओर दिलाया कि 'बाल विकास' और 'नैतिक विकास' के विचारक, बच्चों को उस दृष्टि से नहीं देखते जिस दृष्टि से मैथ्यूज की पुस्तक हमें देखने को प्रेरित करती है । ये विचारक, बच्चों के साथ रोज-रोज मिलकर आराम से उनसे बातें नहीं करते हैं । वे उनसे कुछ खास प्रश्न पूछते हैं , उनसे कुछ विशेष कार्य करवाते हैं और उसके आधार पर उनका वर्गीकरण करते हैं।'

मैथ्यूज अपनी अवधारणाओं को स्थापित करने में तथा विकास मनोविज्ञान की मान्यताओं को निरस्त करने में जिस शैली को अपनाते हैं वह गंभीर तथा जटिल प्रश्नों को भी रोचक एवं सरल कर देती है। लेखक बातचीत का नया शिल्प गढ़ता है जिसके द्वारा वह बाल-मनोविज्ञान की गंभीर पहेलियों को सुलझाता है । बच्चे किस तरह अमूर्त और दार्शनिक प्रश्नों पर अपनी तर्क शृंखला खड़ी कर अपना अभिमत प्रकट करते हैं, यह लेखक ने अनूठे तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है । जिन लोगों की बाल मनोविज्ञान तथा बाल विकास में रुचि है उन्हें यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिये। प्राथमिक शालाओं में कार्यरत शिक्षकों के लिए तो यह पुस्तक पथप्रदर्शक का कार्य कर सकती है। भारत में शिक्षा प्रणाली शिक्षकों के जिस उदासीन दौर से ग्रसित है, उसमें ऐसी कृतियों की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। जैसा कि रॉबर्ट कोल्स का कथन है, इस पुस्तक में बच्चों के साथ जो बातचीत प्रस्तुत की गयी है उसमें किसी असाधारण या अद्भुत बातचीत का उल्लेख नहीं है । वे संवेदनशील माता-पिता या समझदार शिक्षक के रोज के अनुभवों से ली गई हैं । यदि हम जरा-सा समय दें और याद करें तथा ध्यान दें और बच्चों के साथ बातचीत में भाग लें, तो हमें भी इनकी प्रतिध्वनि सुनायी देगी । ◆